ISSN: 2456–4397 RNI No.UPBIL/2016/68067 Vol-6* Issue-9* December-2021
Anthology : The Research

भारतीय संस्कृति के उत्थान में युगपुरूष कबीर का योगदान

Contribution of Yugpurush Kabir in the Upliftment of Indian Culture

Paper Submission: 08/11/2021, Date of Acceptance: 19/12/2021, Date of Publication: 20/12/2021

निर्भय शर्मा
असिस्टेंट प्रोफेसर,
हिंदी विभाग,
न्यू ग्रेट स्कालर्स
महाविद्यालय,
अल्हागंज, शाहजहाँपुर,
उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश

यद्यपि भक्ति काव्य का मूल्यांकन समय-समय पर होता रहा है लेकिन यदि आचार्य शुक्ल जी एवं हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने भक्ति काव्य का मूल्यांकन नहीं किया होता तो हमारे सामने भक्ति काव्य का कौन सा रूप प्रस्तुत होता यह कह पाना बड़ा ही कठिन होता । भक्ति काल में संत कवियों की प्रचुर संख्या देखने को मिलती है । संतकवियों ने आत्मबल के साथ अपनी रचना धर्मिता को पूर्णत्व प्रदान किया है । इन सब कवियों में युगपुरूष कबीर ने भारतीय संस्कृति के उत्थान एवं समाज-सुधार के लिए जो कार्य किया वह सदैव ही स्तुत्य रहेगा ।

Although the evaluation of devotional poetry has been done from time to time, but if Acharya Shukla ji and Hazari Prasad Dwivedi had not evaluated devotional poetry, what form of devotional poetry would have been presented to us? It would have been very difficult to say that. During the Bhakti period, a large number of saint-poets can be seen. Saint poets have given completeness to their creation Dharmita with self-confidence. Among all these poets, the work done by Yugpurush Kabir for the upliftment of Indian culture and social improvement will always be praised.

मुख्यशब्दः संस्कृति, सवेंदना, समृद्ध, सामाजकिता, सदभाव ।
Keywords: Culture, Sense, Prosperous, Socialism, Harmony.

प्रस्तावना

किसी भी संस्कृति में कुछ जोड़ने या बदलने का क्रमसाधारणतया नहीं होता । हमारी भारतीय संस्कृति ने अपने हजारों बर्षो के दीर्घ जीवनकाल में उत्थान पतन के चक्र को कई बार घूमते हुए देखा है और संकट की उस घड़ी में ऐसे महापुरूषों को जन्म दिया है, जो प्राचीन जड़ता को काटकर उसके नवीन अंश का सृजन करके उसको समृद्ध एवं शक्तिशाली बनाते रहे हैं । इस संदर्भ में कबीर ऐसे ही एक युगपुरूष थे । यह समझ पाना बहुत ही मुश्किल एवं टेड़ी खीर है कि कबीर को तोड़ने- छाँटने की आवश्यकता क्यों महसूस हुई । कबीर का धर्म बाँटने का नहीं बल्कि जोड़ने का काम करता है । इसीलिए उनका धर्म अनायास ही समाज-सुधार और मनुष्यता का कीर्तिमान स्थापित करता है । कबीर की सामाजिकता ने उनके अध्यात्म को एक बिरल दृष्टि प्रदान की है और उनके अध्यात्म ने उन्हें सबसे बड़ी सामाजिक वस्तु दी-निर्भयता, भय से मुक्ति और मनुष्य स्वाधीनता एवं समानता के प्रति अविकल्प निष्ठा । धर्म के धरातल पर खड़े महात्मा कबीर सबको इसलिए निर्भय होने की बात कह सके क्योंकि वह स्वयं भी जन्म-मरण के भय से मुक्त हैं ।

युगपुरूष कबीर ने सदैव ही हिंदुओं और मुसलमानों के बीच बन चुकी खाई को पाटने का भगीरथ प्रयास किया । जाति-पाति तथा छूआछूत पर भी उन्होंने अपने गहरे व्यंग्य वाणों से तथाकथित लोगों पर कुठाराघात किया है । कबीर की विलक्षणता के संदर्भ में रामस्वरूप चतुर्वेदी लिखते हैं - 'यह विलक्षण है कि कबीर में जैसा बोलियों का समिश्रण है वैसा ही मनोदशाओं का भी । यह निश्चय ही उनकी कला-क्षमता का प्रमाण है । पूरब में भोजपुरी से लेकर पश्चिम में राजस्थानी तक उनका भाषिक-संवेदनात्मक विस्तार.....। भाषा, संवेदना, विचार-प्रणाली सभी दृष्टियों से कबीर शास्त्रीयता के समक्ष खाँटी देशीपन को महत्व देते है ।'[1]

कबीर अपने समय के सबसे प्रभावशाली एवं सशक्त व्यक्ति रहे हैं । उनके लिए संस्कार के सभी रास्ते बंद थे । वे मुसलमान होकर भी मुसलमान नहीं थे और हिंदू होकर भी हिंदू नहीं । ऐसा लगता है किवह भगवान् की ओर से ही सबसे न्यारे बनाकर भेजे गये थे । वास्तव में कबीर उस चौराहे पर खड़े थे जहाँ से हिंदू या मुसलमान की ओर उनसे होकर जाने का रास्ता नहीं था । उन्होंने सदैव मानवीयता, एकता, सद्भाव, प्रेम, सत्संगति, भक्ति, ज्ञान आदि का पाठ पढ़ाया । कबीर में रामानंद के बीजमंत्र ने सबसे अधिक प्रसार पाया है । कबीरदास एक साथ तीन बड़ी-बड़ी धाराओं को आत्मसात् करके आगे बढ़े थे । ये तीन धाराएँ थीं- उत्तर पूर्व के नाथपंथ और सहजयान का मिश्रित रूप, पश्चिम का सूफी मतवाद और दक्षिण का वेदांत भक्ति वैष्णव धर्म । कविता करना कबीर का उद्देश्य मात्र नहीं था वो तो अपनी बात कहने भर के लिए कविता का सहारा लेते थे । इसीलिए उनकी काव्यकला सहज और अनगढ़ है । उसमें कला का चमत्कार भले ही न हो लेकिन अनुभूति की सच्चाई और

अभिव्यक्ति का खरापन अवश्य ही विद्यमान है । इसीलिए उन्हें जनकवि के रूप में स्वीकार किया गया है । वे जन्म से ही विद्रोही तथा प्रकृति से समाज सुधारक एवं हृदय से लोक कल्याण के आकांक्षी महामानव थे । उनके व्यक्तित्व का प्रतिबिम्व उनके साहित्य में विद्यमान है । वे उपदेशक होने के साथ ही मानव मात्र को सत्य, अहिंसा, प्रेम, करूणा, दया, क्षमा, संतोष, उदारता जैसे गुणों को धारण करने का उपदेश देते हैं साथ ही वे समाज में व्याप्त धार्मिक पाखंड, जातिप्रथा, मिथ्याआडंबर, रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों का खंडन करते हैं । उन्होंने अपनी मुखर आलोचना सेसमाज में व्याप्त ऊँच-नीच, छुआछूत जैसे सामाजिक कोढ़ को आजीवन दूर करने का भरसक प्रयास किया ।

कबीर का निर्गुणपंथ सूफियों के निर्गुणवाद से किंचित भिन्न है । कबीर का ब्रह्म न वेद-वर्णित ईश्वर है, न कुरान-वर्णित खुदा । वह इन दोनों से न्यारा है । वह निर्गुण की लीकबद्धता से अलग है । निर्गुण संबंधी सारी शब्दावली ग्रहण करते हुए वह शास्त्रेतर हो जाता है । यदि उनका निर्गुण शास्त्रोक्त निर्गुण ही होता तो उससे निम्न वर्ण का काम कैसे चलता ? सूफियों के निर्गुणवाद में कुरान का खुदा मौजूद है । पर ब्रह्म या खुदा केप्रति प्रपत्ति या मुहब्बत के कारण दोनों ही भक्त हैं । भक्ति का मूल तत्व राग है जो दोनों में उपस्थित है ।[2]

कबीर के संदर्भ में बच्चन सिंह लिखते हैं-'कबीर का प्रादुर्भाव एक घटना है । हिंदी भक्ति काव्य का प्रथम क्रांतिकारी पुरस्कर्ता वह भी मुसलमान । किन्तु इतिहास में कुछ भी सहसा घटित नहीं होता । कबीर ने जो कुछ किया, उसके पीछे एक परंपरा है, इतिहास की एक सामंती मंजिल है, मुल्ला-पंडितों का वर्चस्व है । किन्तु कबीर के व्यक्तित्व में वह ताकत थी जिससे सामंती व्यवस्था के इन सरमायादारों की मूर्ति तोड़ने में वे एक सीमा तक सफल हुए । लेकिन इसके लिए उन्हें भारी कीमत चुकानी पड़ी । '[3]

कबीर एक सच्चे संतमत कवि हैं । उनके व्यापक एवं गंभीर स्वरूप को स्पष्ट करते हुए डा0 नगेन्द्र लिखते हैं- 'संतमत के समस्त कवियों में कवि कबीर सबसे अधिक प्रतिभाशाली एवं मौलिक थे । उन्होंने कविता लिखनेकी प्रतिज्ञा करके कहीं पर कुछ नहीं लिखा है, न उन्हें पिंगल और अलंकारों का ज्ञान था, तथापि उनमें काव्यानुभूति इतनी प्रबल एवं उत्कृष्ठ थी किवे सरलता के साथ महाकवि कहलाने के अधिकारी हैं । सत्य यह है कि उनकी कविता में छंद, अलंकार, शब्द-शक्ति आदि गौण है और संदेश देने की प्रवृत्ति प्रधान है । इन संदेशों में आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रेरणा पथ-प्रदर्शन तथा संवेदना की भावना सन्निहित है । अलंकारों से सुसज्जित न होते हुए भी उनके संदेश काव्यमय हैं । कबीर की अनुभूति से युक्त, उत्कृष्ट रहस्यवादी, जीवन का संवेदनशील संस्पर्श करने वाले और मर्यादा के रक्षक कवि थे । उन्होंने स्वतः कहा है-' तुम जिन जानो गीत है, यह निज ब्रह्म विचार ।' पथभ्रष्ट समाज को उचित मार्ग पर लाना ही उनका प्रथम लक्ष्य है ।[4]

कवि के रूप में महात्मा कबीरदास जीवन के अत्यन्त निकट हैं । सहजता उनकी रचनाओं की सबसे बड़ी शोभा और कला की सबसे बड़ी विशेषता है । उनके काव्य का आधार स्वानुभूति या यथार्थ है । उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है- ' मैं कहता आँखिन की देखी, तू कहता कागद की लेखी।' वे जन्म से विद्रोही, प्रकृति से समाज सुधारक तथा कारणों से प्रेरित होकर धर्म-सुधारक, प्रगतिशील दार्शनिक और आवश्यकतानुसार कवि थे । उनके व्यकित्तव का पूरा-पूरा प्रतिबिम्ब उनके साहित्य में विद्यमान है । कबीर का प्रतिपाद्य स्थूल रूप से दो भागों में विभक्त है - इनमें से प्रथम रचनात्मक है तथा द्वितीय आलोचनात्मक । रचनात्मक विषयों के अन्तर्गत सतगुरू, नाम, विश्वास, धैर्य, दया, विचार, औदार्य, क्षमा, संतोष आदि विषयों पर व्यवहारिक शैली में भाव व्यक्त किये गये हैं । यहाँ उनकी आलोचनात्मक प्रतिभा के दर्शन नहीं होते । कहने का तात्पर्य यह है कि यहाँ मानव की हीनताओं का दिग्दर्शन नहीं कराया गया । प्रतिपाद्य के दूसरे पक्ष में कबीर की आलोचनात्मक प्रतिभा प्रकट हुई है । यहाँ वे आलोचक, सुधारक, पथ-प्रदर्शक और समन्वयकर्ता के रूप में दृष्टिगत होते हैं ।

कबीर साहब की अभिव्यंजना शैली बहुत ही प्रभावशाली है । प्रतिपाद्य के एक-एक अंग को लेकर इस निरक्षर कवि ने सैकड़ों साखियों की रचना कर डाली है और प्रत्येक साखी में एक नवीनता है । उन्होंने ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, योग, हठयोग आदि विषयों को लेकर बड़े गंभीर भाव व्यक्त किये हैं । उनकी अभिव्यंजना शक्ति उनके व्यक्तित्व के अनुरूप है । जिस प्रकार उनकी दृष्टि में तीक्ष्णता एवं तीव्रता थी उसी प्रकार उनकी अभिव्यंजक प्रतिभा भी प्रचुर मात्रा में प्रखर थी । उनके काव्य की सार्थकता सिद्ध करते हुए नगेन्द्र जी लिखते हैं - ' उनके काव्य में बुद्धि-तत्व की प्रधानता है किन्तु वह शुष्क या नीरस नहीं है । आत्मा, परमात्मा, जीव, जगत् आदि का विवेचन नीरस विषय है परन्तु कबीर ने इनके समाधान के लिए सरल भाषा, भावमयी अनुभूतियों, कल्पना आदि का सहारा लिया है । कबीर के काव्य में भावना-तत्व की भी प्रचुरता है । यदि वे कोरे बुद्धिवादी होते तो उनकी रचनाओं में भावना-पक्ष का अभाव होता, किन्तु यह है कि भावनात्मक स्थलों पर उनके काव्य में रसात्मकता भी है । एक ओर रहस्यवाद के भावानात्मक पक्ष को उद्घाटित करने वाले पदों में श्रृंगार रस की निर्मल धारा है, तो दूसरी ओर सत्य की अनुभूति और ज्ञान की गंभीरता भी है । ' दुलहिन गावहु मंगलचार' इसी कोटि का पद है । सबकी आलोचना करने वाला कबीर इतना रससिक्त होगा, यह आश्चर्य की बात प्रतीत होती है । उनकी कविता में कल्पना या कवित्व या प्रतिभा के दर्शन सर्वत्र होते हैं, किन्तु व्यर्थ कल्पनाओं के पीछे भटकना उनका लक्ष्य नहीं था । उनकी कल्पनाशक्ति में

व्यावहारिकता तथा कलात्मकता का सुंदर समन्वय है । उन्होंने भावों की अभिव्यक्ति के लिए जिन उपकरणों को स्वीकार किया है, वे सब अत्यन्त स्वाभाविक एवं सहज हैं । "[5]

कबीरदास समाज को मनुष्य के चरित्र के आधार पर देखते-परखते थे, तब उसके बारे में कुछ राय बनाते थे । उन्होंने अनुभव किया कि समाज में मनुष्यता, मानवीय आत्मीयता एवं नैतिकता की कद्र नहीं थी । लोग आपाधापी में ही लगे हुए थे । अभिप्राय यह है किवे मनुष्यों को विभक्त करने वाली नीति से सदैव खफा रहते थे । सभी का सामाजिक स्तर ऊँचा हो इसी में वह विश्वास करते हुए कहते हैं -

एक बूँद, एकै मलमूतर, एक चाम एक गूदा ।
एक जोति ते सब उतपना, को वामन को सूदा ॥ [6]

कुछ विचारकों के दृष्टिकोण में कबीर की महत्ता मुख्य रूप से इसी में है कि उन्होंने हिंदूओं और मुसलमानों के वैमनस्य, जाति-पाति के वैषम्य तथा छूआछूत को दूर करने का भरपूर प्रयास किया । सचमुच यह एक बड़ा काम था, किंतु स्वयं कबीर की दृष्टि में विचार किया जाये तो उनके लिए यह उपसाध्य मात्र था, अपने आधारभूत सिद्धांत के निष्ठापूर्वक किये गये अनुगमन का उपफल मात्र था । उनका वास्तविक साध्य तो था प्रभू साक्षात्कार । कबीर ज्ञानी भक्त थे, पारमार्थिक दृष्टि से वे ब्रह्मा को सगुण और निर्गुण दोनों से परे तथा जीव को ब्रह्मा ही मानते हैं, किंतु भक्ति भावना के स्तर पर वे भगवान् को निराकार और भक्त को उसका परम आत्मीय मानते थे । कबीर ने भगवान् को अपना स्वामी, पिता, माता और सखा भी कहा है किंतु सर्वप्रमुख रूप से अपना प्रियतम पति कहा है । उनकी भावमयी कल्पना के अनुरूप प्रभु उनके प्राणप्रिय हैं -

दुलहनीं गावहु मंगलाचार
हम घरि आये हो राजा राम भरतार
तनरत करिहौं, मनरत करिहूँ, पंचतत बराती
रामदेव मोरे पाँहूनैं आये, मैं जोवन मैंमाती
सरीर सरोवर बेदी करिहूँ, ब्रह्मा वेद उचार ।[7]

कबीर की कांता भाव की यह भक्ति भारतीय संस्कृति की एक विशिष्ट देन है । भारत की परंपरागत भक्ति-साधना में कांता भाव का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है, किंतु उसका आलंबन भगवान् का सगुण, अधिकतर अवतारी साकार रूप है । अव्यक्त परमात्मा को अव्यक्त रखकर उसके प्रति प्रेयसी भाव से प्रणय-निवेदन कबीर के पूर्व किसी भारतीय भक्त ने नहीं किया था ।

कबीर के काव्य में दाम्पत्य एवं वात्सल्य के धोतक प्रतीकों का सुंदर प्रयोग हुआ है । उनकी रचनाओं में सांकेतिक प्रतीक, पारिभाषिक प्रतीक, संख्यामूलक प्रतीक, रूपात्मक प्रतीक तथा प्रतीकात्मक उलटबांसियों के सुंदर उदाहरण मिलते हैं । ' कबीर साहित्य प्रतीक-योजना से भरा पड़ा है । .....सत्य तो यह है कि काव्य-रचना उनका साध्य या लक्ष्य नहीं था, फिर भी अपने महान् संदेशों की अभिव्यक्ति के लिए उन्हें काव्य को माध्यम बनाना पड़ा । इस प्रकार रहस्यवादी संत और धर्मगुरू होने के साथ-साथ वे भावप्रवण कवि भी थे ।'[8]

कबीर का जोखिम बहुस्तरीय था । वे जिस काल में उत्पन्न हुए उसमें बहुत से आंतरिक विखंडन थे । इससे कई सामाजिक, नैतिक समस्याएँ उठ खड़ी हुई थी । विद्वेष को समाप्त करने के दो ही उपाय दिख रहे थे । - एक तो बाहयचारों की व्यर्थता बताना और दूसरा भीतर के अद्वैत से साक्षात्कार कराना । मर्म को न समझाना और मिथ्या को सच का दर्जा देना उस युग की बिडंबना थी । लेकिन कबीर के लिए यह समझाना बहुत मुश्किल था- खासकर भीतर का अद्वैत दिखाने के लिए बाहर का कूड़ा-करकट हटाना, क्योंकि कबीर जन्म से जुड़ी किवदंती के बावजूद मुस्लिम जुलाहा परिवार के सदस्य थे तो मुसलमान होकर इस्लाम को ललकारना और मुसलमान होकर पंडितों, जोगियों और हिंदूधर्म को काशी में ललकारना- दोनों पैर आरी पर रखकर चलने के समान था । लेकिन कबीर चल पड़े और ताजिंदगी चलते रहे । वे सच्चे वागी थे, जो साधारण घोड़े को नहीं, एक अड़ियल घोड़े को ही फेरा करते हैं ।

कबीर एक ओर परंपरागत भारतीय समाज की मध्यकालीन अवस्था की उपज थे, तो दूसरी ओर परंपरागत मध्यकालीनता की सामाओं को तोड़ने की कोशिश कर अपने अनुकूल एक समाज की कल्पना भी कर रहे थे । यह भी कहना चाहिए कि सिर्फ कल्पना नहीं कर रहे थे बल्कि अपनी कल्पना को साकार करने के लिए संघर्ष भी कर रहे थे । कबीर का संघर्ष मध्यकालीन भक्ति-आंदोलन का अभिन्न अंग था । इन्हीं बातों ने कबीर को इतिहास-पुरूष बना दिया । इतिहास पुरूष वह होता है, जो इतिहास के विभिन्न युगों के अनुभवों को आत्मसात कर उसे आगे बढ़ाता है । महात्मा कबीर एक साथ इतिहास की धारा को आत्मसात करते हैं और उसका निर्माण करते हुए उसे आगे बढ़ाते हैं, इसीलिए कबीर का समाज भी दो तरह का है । एक समाज वह है, जिसे कबीर ने विरासत में ग्रहण किया, जिसके सदस्य बनकरवे पैदा हुए और जिए-मरे । दूसरा समाज वह है जिसका वे निर्माण करना चाहते थे ।

बच्चन सिंह कबीर की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं-'उन्हें कोई भी मत स्वीकार नहीं है जो मनुष्य-मनुष्य के बीच भेद उत्पन्न करता है । उन्हें कोई भी अनुष्ठान या साधना मंजूर नहीं है

जो बुद्धि -विरूद्ध है । उन्हें कोई भी शास्त्र मान्य नहीं है जो आत्मज्ञान को कुंठित करता है । वेद-कितेब भ्रमोत्पादक हैं, अतः अस्वीकार्य हैं । .....सामंती समाज की जड़ता को तोड़ने का जितना काम अकेले कबीर ने किया उतना अन्य संतों और सगुणमार्गियों ने मिलकर भी नहीं किया । उनकी चाटों की मार से, जातिवाद के संरक्षक पंडित और मौलवी समान रूप से दुःखी हैं । वे सबसे अधिक आधुनिक और सबसे अधिक प्रासंगिक हैं । [9]

अध्ययन का उद्देश्य

अन्ततोगत्वा हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि संतकाव्य परंपरा से जुड़े सभी कवियों ने भारतीय संस्कृति के उत्थान में जन जागरण का जो कार्य किया वह अपने आप में बहुत ही प्रासंगिक है । इस संदर्भ में कबीर का कोई सानी नहीं है । उन्होंने भारतीय संस्कृति एवं भारतवर्ष में पीड़ित, शोषित, अपमानित एवं वंचित समुदाय के उत्थान के लिए जो कार्य किया वह अपने आप में अलौकिक एवं प्रासंगिक है । उन्होंने जीवन पर्यन्त नव-निर्माण की विचारधारा जीवंत रखी तथा उसी के अनुरूप आगे बढ़ते गये । जनसामान्य का उत्थान एवं सामाजिक समरसता लाना ही उनका एक मात्र उद्देश्य था ।

निष्कर्ष

निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि कबीर पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने धर्मों, संप्रदायों, जातियों, वर्णों को नकारकर ऐसे समाज की स्थापना का प्रयास किया जिसमें धर्म, संप्रदाय, ऊँच-नीच के भेदभाव के लिए कोई स्थान नहीं है । उनके अपने समाज में न कोई हिंदू है, न मुसलमान सब मनुष्य हैं, कोई किसी से छोटा-बड़ा नहीं है । पीड़ित, शोषित, अपमानित जन-समाज के दुःख से जितना सरोकार कबीरदास का है उतना भक्तिकाल के किसी अन्य कवि का नहीं । उनका गैर-समझौतावादी व्यक्तित्व अलग से ही चमकता है । कबीर में कवि और पाठक दोनों मिलकर काव्य का निर्माण करते हैं, इसीलिए उनकी उपदेयता और भी प्रासंगिक हो जाती है ।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास-रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृष्ठ संख्या-40-41*
2. *हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास - बच्चन सिंह, पृष्ठ सं0-82*
3. *हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास-बच्चन सिंह, पृष्ठ सं0-83*
4. *हिंदी साहित्य का इतिहास-डा0 नगेन्द्र, पृष्ठ सं0-128*
5. *हिंदी साहित्य का इतिहास-डा0 नगेन्द्र, पृष्ठ सं0-129*
6. *कबीर ग्रंथावली (नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा संपादित) पृष्ठ सं0-57*
7. *कबीर ग्रंथावली (नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा संपादित) पदावली, प्रथम पद*
8. *हिंदी साहित्य का इतिहास- डा0 नगेन्द्र, पृष्ठ सं0-129*
9. *हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास - बच्चन सिंह, पृष्ठ सं0-87-88*